

## आचारांगसूत्र का वैशिष्ट्य

भगवान महावीर का सब से पहला उपदेश आचारांग में संकलित किया गया। आचारांग का पहला अध्ययन षट्काय जीवों की रक्षार्थ रचा गया। महावीर ने स्पष्टतः जोर देकर निर्देश दिया कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति और त्रसकाय जीव जीव हैं, साक्षात् प्राणधारी जीव। इन्हें अपने ढंग से जीने देना धर्म है, इन्हें कष्ट पहुंचाना या नष्ट करना हिंसा है, पाप है। अहिंसा परम धर्म है और हिंसा महापाप। इन्ही षट्काय जीवों की संतति पुराना शब्दावली में संसार और आधुनिक शब्दावली में पर्यावरण से अभिहित है। अपने संयत और सम्यक् आचरण से इस षट्कायिक पर्यावरणीय संहति की रक्षा करना जैन धर्म का मूलाधार है।

श्रमण-परम्परा अहिंसक प्रयोगों के उदाहरणों से भरी पड़ी है। तीर्थंकरों ने पर्यावरण के संरक्षण से ही अपनी साधना प्रारम्भ की है। भ. ऋषभदेव ने कृषि एवं वन-सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिये लोगों को सही ढंग से जीने की कला सिखायी। तीर्थंकर नेमिनाथ ने पशु-पक्षियों के प्राणों के समक्ष मनुष्य की विलासिता को निरर्थक प्रमाणित किया। स्वयं के त्याग द्वारा उन्होंने प्राणि-जगत् की स्वतन्त्रता की रक्षा की है। भ. पार्श्वनाथ ने धर्म और साधना के क्षेत्र में हिंसक अनुष्ठानों को अनुमति नहीं दी। अग्नि को व्यर्थ में जलाना और पानी को निरर्थक बहा देना भी हिंसा के सूक्ष्म द्वार हैं। भगवान् महावीर ने मानव जीवन को उन सूक्ष्म स्तरों तक अपनी साधना के द्वारा पहुंचाया है, जहां हिंसा और तृष्णा असम्भव हो जाय। षट्काय के जीवों की रक्षा में ही धर्म की घोषणा करके महावीर ने पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा, वनस्पति, कीड़े-मकोड़े, पशुपक्षी एवं मानव इन सबको सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। तभी वे कह सके— " **मित्ति में सव्व भूयेसु, वेरं मज्झं ण केणइ** " —मेरी सब प्राणियों से मित्रता है, मेरा किसी से बैर नहीं है। जैन जीवन शैली में पर्यावरण-सुरक्षा आरम्भ से ही ऐसी धुली-मिली रही है कि उसकी ओर अलग से विचार किए जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। आज जब अवनति की ओर जाते हुए जीवन मूल्यों के कारण वह जीवन शैली ही प्रदूषित हो गई है और साथ-साथ पर्यावरण-प्रदूषण भी अपने चरम की ओर बढ़ रहा है तब यह आवश्यक हो गया है कि हर पहलू को पर्यावरण के संदर्भ में देखा-परखा जाए। जैन आगमों में प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ आचारांगसूत्र को पर्यावरण के दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो जान पड़ेगा कि उस विषय की सामग्री स्थान-स्थान पर वहां बिखरी पड़ी है।

आचारांग में पर्यावरण के प्रमुख घटकों को विभिन्न प्रसंगों में व्याख्यायित किया गया है। सर्वप्रथम पृथ्वीकाय जीवों के प्रति होने वाली हिंसा का वर्णन किया है। पृथ्वीकायिक जीव पारम्परिक परिभाषा में वे सूक्ष्म जीव हैं जिनसे पृथ्वी तत्व का निर्माण होता है तथा जो जीवन के लिए पृथ्वी तत्व पर आश्रित हैं। ठीक इसी प्रकार जलकाय, वायुकाय और अग्निकाय के जीवों की बात इस ग्रन्थ में की गयी है। इन जीवों की परिभाषा तथा जीवन प्रणाली आदि विषयों की चर्चा एक सर्वथा अलग और अपने आप में विस्तृत विषय है। हमारे दृष्टिकोण के लिए इतना ही यथेष्ट है कि दृश्य जगत् से परे जीवों का एक सूक्ष्म जगत् भी है जिसमें होने वाली क्रियाएं हमें प्रभावित करती हैं तथा हमसे वे प्रभावित होती हैं। ऐसी स्थिति में हमारी वह प्रत्येक क्रिया जो उस सूक्ष्म जगत् को हानि पहुंचाती है हिंसा है और त्याज्य है। पर्यावरण-संरक्षण का यह पहला सोपान है। भगवान महावीर ने आचारांगसूत्र में हिंसा की सूक्ष्म व्याख्या करते हुए उसे व्यक्तित्व को विकृत करने वाली कहा है। हिंसा की क्रियाएं पर्यावरण असंतुलन में प्रमुख कारण हैं। आचारांग में वस्तु जगत् और प्राणीजगत् के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। उसमें बताया गया है कि मन-वचन-काय की क्रियाएं आस-पास के वातावरण पर प्रभाव डालती हैं। अतः मन, वाणी और शरीर की हलचल के प्रति सचेत होना आवश्यक है। अनुचित कार्यों की पहिचान करना जरूरी है।

भगवान महावीर ने अनुचित कार्यों का मुख्य कारण अज्ञान और असावधानी (प्रमाद) को माना है। प्रमादी व्यक्ति और मूर्छित (अज्ञानी) व्यक्ति को सब ओर से भय रहता है। वह तनाव से घिरा हुआ होता है। इसलिए वह आस-पास के वातावरण पर शासन करने के लिए दूषित कार्य करता है। आचारांगसूत्र

में इन प्रदूषणों से बचने के लिए अज्ञान और प्रमाद को दूर करने की बात कही गई है। इसके लिए व्यक्ति को जागरूक रहने के लिए कहा गया है। संसार की वास्तविकता को समझना ही जागरूकता है। ऐसा ज्ञानी व्यक्ति अपनी क्रियाओं से वातावरण को दूषित नहीं करता। वह स्वयं के अस्तित्व और अन्य प्राणियों के अस्तित्व का सम्मान करने वाला होता है। यही आचारांगसूत्र की पर्यावरण चेतना है। इसके लिए अनासक्ति, समता, वैचारिक उदारता, करुणा आदि सूत्रों की व्याख्या आचारांग में प्राप्त है, जिसका विश्लेषण करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या जितनी प्राकृतिक है, उतनी ही सांस्कृतिक और मानसिक असंतुलन से जुड़ी हुई है। संवेदनशीलता और संतोषवृत्ति के अभाव ने पर्यावरण को असंतुलित, विनाशकारी बनाया है। अतः प्राकृतिक समाधान के साथ-साथ पर्यावरण-संतुलन के लिए उन आध्यात्मिक सूत्रों की खोज भी मानव को करनी होगी, जो सांस्कृतिक और मानसिक दृष्टि से मन मनुष्य को पूर्ण करें। प्राचीन आगम ग्रन्थों में अहिंसा, करुणा, आजीविका-शुद्धि अपरिग्रह वृत्ति एवं सद्भावना आदि के मूल्य प्रतिपादित हैं, जो पर्यावरण-संतुलन के वास्तविक आधार हैं। जैन आगमों में इस प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिपादन है, जो मानव की संवेदना को बढ़ाते हैं तथा प्रकृति के संरक्षण में अहम भूमिका निभाते हैं।

### प्रकृति और मानव में समानता

पर्यावरण असंतुलन की समस्या प्रकृति पर शासन करने, विजय प्राप्त करने की दुष्प्रवृत्ति के कारण उपस्थित हुई है। प्राचीन जीवन पद्धति एवं विचारधारा में प्रकृति को सहचरी मानकर उसके संरक्षण की प्रेरणा दी गयी है। जैन आगमों में भी यह चिन्तन विद्यमान है। आचारांग सूत्र में वनस्पति और मनुष्य की तुलना करते हुए कहा गया है कि दोनों का जन्म होता है, वृद्धि होती है, दोनों में चेतनता है और काटने से म्लानता आती है। आहारग्रहण की प्रक्रिया दोनों में समान है। यथा—

मनुष्य भी जन्म लेता है।	वनस्पति भी जन्म लेती है।
मनुष्य भी बढ़ता है।	वनस्पति भी बढ़ती है।
मनुष्य भी चेतना युक्त है।	वनस्पति भी चेतना युक्त है।
मनुष्य शरीर छिन्न होने पर म्लान हो जाता है।	वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है।
मनुष्य भी आहार करता है।	वनस्पति भी आहार करती है।
मनुष्य शरीर भी अनित्य है,	वनस्पति भी शरीर भी अनित्य है।
मनुष्य शरीर अशास्वत है,	वनस्पति शरीर भी अशास्वत है।
मनुष्य शरीर आहार से सबल होता है, आहार के अभाव में दुर्बल होता है,	
वनस्पति का शरीर भी इसी प्रकार आहार से उपचित होता है। आहार के अभाव में अपचित होता है	
मनुष्य शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है।	
वनस्पति शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है।	

— से बेमि

इमं पि जातिधम्मयं,	एयं पि जातिधम्मयं ,
इमं पि बुद्धिधम्मयं,	एयं पि बुद्धिधम्मयं ,
इमं पि चित्तमंतयं,	एयं पि चित्तमंतयं ,
इमं पिं छिन्नं मिलति,	एयं पि छिण्णं मिलति ,

इमं पित आहारगं,                      एयं पि आहारगं ,  
 इमं पि अणितियं,                      एयं पि अणितियं ,  
 इमं पि असासयं ,                      एयं पि असासयं ,

— आचा. 1. सू. 45

आचारांग में दुख प्रकट करते हुए कहा गया है कि मनुष्य क्षुद्र कारणों के वश वनस्पति प्राकृतिक सम्पदा को नष्ट करता है। यथा— यह दुःख की बात है कि वह कोई मनुष्य इस ही वर्तमान जीवन की रक्षा के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा पाने के लिए, भावी जन्म की उधेड़ बुन के कारण, वर्तमान में मरण भय के कारण तथा मोक्ष परम शान्ति के लिए और दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही वनस्पतिकायिक जीवन समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा वनस्पतिकायिक जीव समूह की हिंसा करवाता है या वनस्पतिकायिक जीव समूह की हिंसा करते हुए करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है। वह हिंसा कार्य उस मनुष्य के अहित के लिए होता है, वह हिंसा कार्य उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का कारण होता है।

**समारंभति, अण्णेहिं वा वणस्सतिसत्थं समारंभवेति,**

**अण्णे वा वणस्सतिसत्थं समारंभमाणे समुणुजणति। तं से अहियाए, तं से अबोहीए ।**

### संयम की प्रक्रिया

आचारांगसूत्र में संयम की पूरी प्रक्रिया प्रतिपादित है। आशाओं और इच्छाओं का समूह मानसिक तनाव, अशान्ति दुख का कारण है। इसलिए आचारांग का कथन है कि मनुष्य आशा और इच्छा को त्यागे। जो व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता है, वह बहिर्मुखी ही बना रहता है, जिसके फल स्वरूप उसके कर्म-बंधन नहीं हटते हैं और उसके विभाग-संयोग राग-द्वेषात्मक भाव नष्ट नहीं होते हैं। अतः इन्द्रिय-विषय में अनासक्ति साधना के लिए आवश्यक है। यही से संयम की यात्रा प्रारम्भ होती है। आचारांग का कथन है कि हे मनुष्य! तू अनासक्त हो जा और अपने को नियन्त्रित कर। जैसे अग्नि जीर्ण (सूखी) लकड़ियों को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अनासक्त व्यक्ति राग-द्वेष को नष्ट कर देती है। कषाएँ मनुष्य की स्वाभाविकता को नष्ट कर देती हैं। कषायों का राजा मोह है। जो एक मोह को नष्ट कर देता है, वह बहुत कषायों को नष्ट कर देता है। यथा—

**सव्वतो पमत्तस्स भयं, सव्वतो अप्पमत्तस्स णत्थि भयं। जे एगणामे से बहुणामे, जे बहुणामे से एगणामे।** —आचा. 1. सू. 129

### समता में ही धर्म

आचारांगसूत्र में कहा गया है कि मानव-समाज में न कोई नीच है और न कोई उच्च है। सभी के साथ समतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। आचारांग के अनुसार समता में ही धर्म है। इस जगत् में सब प्राणियों के लिए पीड़ा अशान्ति है, दुःख-युक्त है। सभी प्राणियों के लिए यहाँ सुख अनुकूल होते हैं, दुःख प्रतिकूल होते हैं, वध अप्रिय होते हैं, तथा जिन्दा रहने की अवस्थाएँ प्रिय होती हैं। सब प्राणियों के लिए जीवन प्रिय होता है। अतः आचारांग का कथन है कि कोई भी प्राणी मारा नहीं जाना चाहिए, गुलाम नहीं बनाया जाना चाहिए, शासित नहीं किया जाना चाहिए सताया नहीं जाना चाहिए और अशान्त नहीं किया जाना चाहिए। यथा—

**सव्वे पाणा सव्वे भूता जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेतव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उददवेयव्वा । एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए समेच्च लोयं खेतण्णेहिं पवेदिते।**

—आचा. 1. सू. 132

यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, और शाश्वत है। जो अहिंसा का पालन करता है, वह निर्भय हो जाता है। हिंसा तीव्र से तीव्र होती है, किन्तु अहिंसा सरल होती है। अतः हिंसा को मनुष्य त्यागे।

जैन आगमों में पृथ्वीकायिक एवं वनस्पतिकायिक आदि जीवों की हिंसा करने में दोष लगने की बात कही गयी है। मृग आदि का शिकार करने और लकड़ियों में आग लगाने आदि की क्रियाओं को पापमूलक कहा गया है। वृक्ष के फल, शाखा, कन्द-मूल आदि को नष्ट करने की क्रिया को हिंसक वृत्ति माना गया है। भगवतीसूत्र में उल्लेख है कि तापस शिव राजर्षि भी अपनी पूजा के लिए हरी वनस्पति, कन्द-मूल, पुष्प आदि के उपयोग के लिए लोकपालों की अनुमति लेते हैं। ग्रन्थ में एक नर्तकी का उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है कि संसार में रहते हुए भी जीव एक दूसरे की स्वतंत्रता हनन एवं हिंसा आदि से बच सकते हैं। जैन आगमों में श्रावकों के लिए जिन पन्द्रह कर्मादानों (आजीविका के कार्यों) का निषेध किया गया है, वे सब पर्यावरण संरक्षण के ही उपाय हैं। अतः जैन आगमों में जीवन और जीविका दोनों को शुद्ध रखने की बात कही गयी है, जो प्रमुख आधार है पर्यावरण-सतुलन का। धार्मिक ग्रन्थों के विभिन्न सिद्धान्तों का पर्यावरण संरक्षण के साथ तुलनात्मक अध्ययन अब विद्वान करने लगे हैं।

इसके अतिरिक्त श्रावक एवं साधु की सामान्य चर्या भी अनेक प्रकार से पर्यावरण-संरक्षण का ही प्रयत्न है। प्रतिक्रमण, सामयिक, ध्यान ध्वनिप्रदूषण के लिए कवच है। अपरिग्रहवृत्ति प्रकृतिसंरक्षण की आधारशिला है। जीवों के प्रति संवेदना वायु, जल एवं पृथ्वी को सुरक्षित रखने का उपाय है। वन संरक्षण हरितवन की रक्षा के नियम में निहित है। यत्नाचार जैन जीवन-पद्धति का केन्द्र बिन्दु है। यही जतन पर्यावरण संरक्षण के लिए अनिवार्य है। जीवन शुद्धि के साथ जीविका शुद्धि भी आवश्यक है।

वनस्पति जीवों की अनेक योनियां आगमों में कही गई हैं। योनिभूत बीज में जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए उनका संरक्षण भी महत्वपूर्ण माना गया है। क्योंकि जो जीव मूलरूप में होता है वही पत्र, कोपल आदि की अवस्था को प्राप्त होता है और वही वृद्धि को प्राप्त करता है। प्राणवान, उच्छ्वास, आहार आदि को ग्रहण करता है। वे अनन्त लोक में हैं इसलिए भी उन्हें जीव मानकर उनकी रक्षा भी आवश्यक है। वनस्पति का समारंभ करना, कराना तथा करते हुए का अनुमोदन करना अनेक प्रकार के जीवों की हिंसा करता है, इसलिए आगमों में यह कथन किया गया कि जो ऐसा करता है, " तं से अहियाए तं से अवोहीए "। वह अहित करता है और अबोधि का कारण माना जाता है इसलिए वनस्पतिकाय जीवों की हिंसा उचित नहीं है।

प्रकृति और मनुष्य दोनों पर भावनाओं- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का प्रभाव पड़ता है। भगवतीसूत्र में भी वनस्पतिकाय के जीवों के विश्लेषण के प्रसंग में उनकी आहार संज्ञा आदि का विवेचन है। शालि इत्यादि वनस्पतियों में अन्य त्रशजीवों की तरह गति, परिमाण, अवगाहना, कर्म, लेश्या, उत्पत्ति आदि का अस्तित्व बताया गया है। अन्य आगमों में भी वनस्पति और मनुष्य के स्वभाव के साथ तुलना के सन्दर्भ उपलब्ध हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने अनेक उदाहरण वनस्पति जगत् से दिये हैं। यह सब केवल इसलिए कि मनुष्य यह समझ जाय कि वनस्पति और मनुष्य में कई धरातलों पर समानता है। इसलिए मनुष्य वनस्पति को नष्ट न करें, उसका संरक्षण करें।

### हिंसा के दुष्परिणाम-

वनस्पति की रक्षा के लिए जैन आगमों में दूसरा उपाय भी अपनाया गया है वह है पापकर्मा का भय प्रदर्शित करना एवं हिंसा के दुष्परिणामों से व्यक्ति को परिचित कराना। भगवतीसूत्र के प्रथम शतक के आठवें उद्देशक में केवल वनस्पति ही नहीं, अपितु पशुजगत, प्राणीजगत, मनुष्यहिंसा, शिकार आदि कार्यों में हिंसा की कौन-कौनसी क्रियाएं लगती हैं, इसका विवेचन किया गया है। कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापतिकी और प्राणातिपातिकी क्रियाओं के अन्तर्गत, मन वचन-काय सभी प्रकार की हिंसा समाहित है, जिससे बचने को कहा गया है। आगम ग्रन्थों में इस प्रकार हिंसा के दुष्परिणामों से परिचित कराकर व्यक्ति के मन में करुणा, अहिंसा, दया आदि के भाव जगाने के पीछे यही उद्देश्य प्रतीत होता है कि व्यक्ति संवेदनशील हो जाय तो यह अपने पर्यावरण को नष्ट करने की बात नहीं सोच सकता। षटकाय के जीवों की हिंसा से विरत रहने के उपदेश के पीछे यही भावना है। हिंसा और तृष्णा से विरक्त अनासक्ति और संयम से सम्भव है।

## “जतन” भावना

संसार में चारों ओर प्राणी, जीवन्त प्रकृति भरी हुई है कि मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय प्राणियों के घात-प्रतिघात से बच नहीं सकता। किन्तु वह यह प्रयत्न (जतन) तो कर सकता है कि उसके जीवन-यापन के कार्यों से कम से कम प्राणियों का घात हो। मानव की इस अहिंसक भावना से ही करोड़ों प्राणियों को जीवनदान मिल जाता है। इसी “जतन” भावना के कारण जैन दर्शन के प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है—

जयं चरे जयं तिट्ठे जयमासे जयं सये ।

जयं भुज्जेज्ज भासजेज्ज एव पावं ण वज्जइ ।।

व्यक्ति यत्नपूर्वक चले, यत्नपूर्वक ठहरे, यत्नपूर्वक बैठे, यत्नपूर्वक सोए, यत्नपूर्वक भोजन करे और यत्नपूर्वक बोले तो इस प्रकार की जीवन-पद्धति से वह पाप-कर्म को नहीं बांधता है। श्रमणों द्वारा प्रचलित “जतन” की यह जीवन-पद्धति पर्यावरण-संतुलन की कुंजी है। इसकी परम्परा भी भारतीय जीवन शैली में रही है। कबीर जैसे सन्त भी यही कहते हैं—

या चादर को सुर-नर-मुनि ओढ़ी

ओढ़ के मैली कीनी ।

दास कबीर “जतन” कर ओढ़ी

ज्योंकि त्यों धर दीनी ।।

कबीर का यह “जतन” श्रमण-परम्परा का “यतनाचार” है। “चादर” संपूर्ण पर्यावरण है, जिसे मैला नहीं करना है और अपना काम भी चला लेना है।

## सन्दर्भ

- 1— प्रेम सुमन जैन, पर्यावरण और धर्म, अ. भा. जैन विद्वत परिषद, जयपुर 1988
- 2—पं. कन्हैयालाल लोढा, जैन आगमों में वनस्पति विज्ञान, जयपुर, 1989
- 3—प्रेम सुमन जैन, पर्यावरण-सन्तुलन एवं शाकाहार, संघी प्रकाशन, जयपुर, 1995
- 4—P. S. Jain & R. M. Lodha (ed.) Medieval Jainism: Culture & Environment, Ashish Publishing House, New Delhi, 1990
- 5—वर्ल्ड रिलीजन्स एण्ड द इनवायरन्मेन्ट, गीतांजली प्रकाशन, दिल्ली 1991
- 6—जैन, नेमीचन्द्र, शाकाहार : मानव सभ्यता की सुबह, दिल्ली 1992
- 7—आचारांगसूत्र, आगम प्रकाशन, ब्यावर 1980
- 8—आचारांग चयनिका— सम्पा. डॉ. सोगानी, प्राकृत भारती, जयपुर 1987
- 9—डॉ. मुनि श्री भुवनेश, जैन आगमों के आचारदर्शन और पर्यावरण-संरक्षण का मूल्यांकन चैन्नई, 1998
- 10—प्रेम सुमन जैन, जैन संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, अरविन्द्र प्रकाशन, उदयपुर 2001
- 11—जैन, भागचन्द्र भास्कर, जैनधर्म और पर्यावरण संरक्षण, दिल्ली 2001
- 12—आचार्य महाप्रज्ञ, आचारांगसूत्र एवं आचारांग भाष्य— जैन विश्व भारती लाड़नू ।
- 13—आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के अछूते पहलू, लाड़नू 1992
- 14—हरिश्चन्द्र व्यास, मानव और पर्यावरण, दिल्ली 1991
- 15—G.A. Thecolorson, Studies in Human Ecology, New York, 1961.